Vol 3 Issue 9 March 2014 ISSN No :2231-5063

International Multidisciplinary Research Journal

Golden Research Thoughts

Chief Editor
Dr.Tukaram Narayan Shinde

Publisher
Mrs.Laxmi Ashok Yakkaldevi

Associate Editor
Dr.Rajani Dalvi

Honorary
Mr.Ashok Yakkaldevi

Welcome to GRT

RNI MAHMUL/2011/38595 **ISSN No.2231-5063**

Golden Research Thoughts Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial board.Readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

International Advisory Board

Flávio de São Pedro Filho
Federal University of Rondonia, Brazil

Kamani Perera
Regional Center For Strategic Studies, Sri Lanka

Janaki Sinnasamy
Librarian, University of Malaya

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

Titus PopPhD, Partium Christian University, Oradea,Romania

Mohammad Hailat
Dept. of Mathematical Sciences, University of South Carolina Aiken

Abdullah Sabbagh
Engineering Studies, Sydney

Catalina Neculai
University of Coventry, UK

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Fabricio Moraes de Almeida
Federal University of Rondonia, Brazil

George - Calin SERITAN
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences Al. I. Cuza University, Iasi

Hasan Baktir
English Language and Literature Department, Kayseri

Ghayoor Abbas Chotana
Dept of Chemistry, Lahore University of Management Sciences[PK]

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Horia Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest,Romania

Ilie Pintea,
Spiru Haret University, Romania

Xiaohua Yang
PhD, USA

.....More

Editorial Board

Pratap Vyamktrao Naikwade
ASP College Devrukh,Ratnagiri,MS India

R. R. Patil
Head Geology Department Solapur University,Solapur

Rama Bhosale
Prin. and Jt. Director Higher Education, Panvel

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University,Kolhapur

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Chakane Sanjay Dnyaneshwar
Arts, Science & Commerce College, Indapur, Pune

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary,Play India Play,Meerut(U.P.)

Iresh Swami
Ex - VC. Solapur University, Solapur

N.S. Dhaygude
Ex. Prin. Dayanand College, Solapur

Narendra Kadu
Jt. Director Higher Education, Pune

K. M. Bhandarkar
Praful Patel College of Education, Gondia

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

G. P. Patankar
S. D. M. Degree College, Honavar, Karnataka

Maj. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

S.Parvathi Devi
Ph.D.-University of Allahabad

Sonal Singh,
Vikram University, Ujjain

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

R. R. Yalikar
Director Managment Institute, Solapur

Umesh Rajderkar
Head Humanities & Social Science YCMOU,Nashik

S. R. Pandya
Head Education Dept. Mumbai University, Mumbai

Alka Darshan Shrivastava
Shaskiya Snatkottar Mahavidyalaya, Dhar

Rahul Shriram Sudke
Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore

S.KANNAN
Annamalai University,TN

Satish Kumar Kalhotra
Maulana Azad National Urdu University

Address:-Ashok Yakkaldevi 258/34, Raviwar Peth, Solapur - 413 005 Maharashtra, India
Cell : 9595 359 435, Ph No: 02172372010 Email: ayisrj@yahoo.in Website: www.aygrt.isrj.net

Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 2.2052(UIF)
Volume-3 | Issue-9 | March-2014
Available online at www.aygrt.isrj.net

पृथ्वी पर जीवन का आगमन (आरम्भ)

चन्द्रिकासिंह सोमवंशी , जशवन्तकुमार प्रेमजीभाई चौधरी

[1]रिसर्च स्कॉलर , Teacher Fellowship in History (U.G.C) DOING POST-DOCTORAL (D.Litt.) DEGREE IN HISTORY) National Fellowship, Sponsored By Ministry of H.R.D., New Delhi.
आदीपुर (कच्छ) – गुजरात
[2]P.N, M.P. and D.P. Arts, Commerce And Science College, Lunawada – Gujarat

***सारांश* :-** "जीवन की स्थापना, पृथ्वी पर, करोड़ों बर्श पूर्व ब्राह्मण्ड के किसी अन्य भाग में निर्विष्ट बुध्दिमान प्राणीयों ने की हो गी।" यह एक आश्चर्यजनक नबीन सिध्दान्त, ब्रिटेन के एक सर्वोच्च अन्तरिक्ष बैज्ञानिक सर फ्रायड़ हायल ने प्रस्तुत किया है जिसमें परम्परागत मनुष्योत्पत्ति के दैबिक सिध्दान्त और डार्बिन के विकाशबाद को चुनौती दी गयी हैं। सर फ्रायड़ हायल के अनुसार सन् 1982 जनवरी 18 को 'टाइम्स ऑफ् इण्डिया' में रिपोर्ट प्रकाशित हुआ था। अन्तरिक्षवासियों ने सुदूर प्राचीन काल में पृथ्वी पर जीवन को स्थापित किया। बैज्ञानिक लंकानिवासी बिक्रमसिंह ने विकाशबाद के मत के खण्डन में तीन पुस्तकें भी लिख डाली। उनके अनुसार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति आकस्मिक (Accident) नहीं हैं, वरन् ब्राह्मण्ड के ध्रुवसिध्दान्त के अनुसार हुई है। सन् 1981 ई. के 6 सितम्बर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में ही ज्योफ्रीलिनी नामक टिप्पणीकार ने इन दोनों बैज्ञानिकों के जीवोत्पत्ति के सिधान्त का संक्षेप में God alone knowsi शीर्षक से परिचय दिया। हिन्दी के हिन्दुस्तान में "विकाश या लम्बी छलाँग" शीर्षक नाम दिया। उनका मानना है कि जीवों का विकाश धीरे –धीरे न होकर बीच – बीच में छलाँग लगा कर हुआ हैं। ब्राह्मण्ड ही ईश्वर है और ईश्वर ही ब्राह्मण्ड है। सभ्यता के वर्णन करने से पहले हम जिस पावन भूमि पर विश्व की वे तमाम सभ्यताएँ पनपी, उस पवित्र भूमि अर्थात पृथ्वी का वर्णन करते हैं। पृथ्वी का आकार नारंगी जैसा है। इसके दोनों सिरे नारंगी की तरह चपटे और अन्दर की तरफ धंसे हुए हैं, जिन्हें उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। इन ध्रुवों पर सुर्य की किरणें सीधी नहीं पड़ती है। यही कारण है कि यह भाग अत्यन्त ठन्डे और बर्फ (हिम) से ढंके हुए हैं। पेंग्विन (Penguine) नामक एक पक्षी (चिड़िया) ही यहाँ पर पायी जाती है। मनुष्यों की आबादी बिलकुल नहीं है। पृथ्वी के ठण्ड़ी होने के लाखों बर्षों के बाद धीरे – धीरे इस पर जीवन का आरम्भ होना शुरु हुआ । सबसे पहले समुद्री पौधे, घोघे स्पन्ज एक सेल के जन्तु ; ।उवमइंद्ध और बिंना हड्डी वाली मछलियाँ (Jelly Fish) पैदा हुई। इनके बच्चे नहीं होते और न आँखे या शरीर के अन्य अंग ही । इनका केवल हृदय ही होता हैं। यह स्पंज से ऊँची जाति का जीव हैं। समय के साथ ही साथ बिना हड्डी वाली मछली हिल–डुल सकती हैं। वह अपने आपको बीच से पतली करते–करते एक से दो मछलियों में परिवर्तित कर लेती हैं। इनके बच्चे नही होते और न आँखे या शरीर के अन्य अंग। ऐसे अनेक जीव आज भी समुद्रतल में पाए जाते हैं जिन्हें देख कर यह अन्दाज लगाना भी कठिन हैं कि वे पौधे हैं अथवा जीवधारी। "नेशनल ज्योग्राफी चैनल" और 'डिस्कवरी चैनल' पर इनका बिस्तार से चर्चा होता रहता हैं। आरम्भ में अनेक ऐसे जीव धारी रहे होंगे, किन्तु प्रकृति से अपनी कमजोर शरीर–रचना के कारण रक्षा न कर सकने के कारण नष्ट हो गयें। इन आदि जीवधारियों में से शंख, सीपी तथा अन्य हड्डी वाले जीवों का विकाश हुआ और दूसरे हड्डी वाले जीवधारी प्रकृति से संघर्ष कर सकने में योग्य पैदा हुए। जैसे हड्डी वाली मछली (Fossilfish)। ये जीवधारी सूखी जमीन पर भी थोड़ी देर तक रेंग सकते और जीवित रह सकते थे। जबकि इनके पूर्वज पानी के बाहर आते ही मर जाते थे। ये जीवधारीसमुद्रतल पर रहते थे। उन पर रेत की पर्ते पड़ती रहती रहीं, जो आगे चल कर चट्टानों का रूप धारण कर लिया। समुद्र मैदान बन गये। बहुत से मैदानों में आज भी इन जीवों के ढाँचें खोदने व उत्खनन से प्राप्त होते हैं। एक चटा्न के स्तर की तरावीर हम दें रहे है।

***प्रस्तावना* :-**

सभ्यता के इतिहास में मेसोपोटोमिया की सभ्यता सुमेरिया की सभ्यता, क्रीट की सभ्यता, एशिरिया की सभ्यता, बेबीलोनिया की सभ्यता का इतिहास बहुत ही उज्जवल एवं अति प्राचीन है। चीन की सभ्यता, मिश्र की सभ्यता, सिन्धुघाटी की सभ्यता एवं मोहनजोदडों की

सभ्यता, धोलावीरा की सभ्यता, कुरून की सभ्यता, एवं प्राचीन भारत की सभ्यता इत्यादि का अपना–अपना एक अलग ही महत्व है। वैसे यदि देखा जाय तो मिस्र (इजिप्त – Egypt) की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम् सभ्यताओं में से सबसे प्राचीन सभ्यता मानी जाती है। महान् इतिहासकार प्रो. फ्लीन्डर्स पेट्री के अनुसार मिश्र की प्राचीन सभ्यता का उदय ईसा के 10,000 वर्ष पूर्व (दस हजार वर्ष पूर्व) हो चुका था। इतिहासकारों का मानना है कि प्राचीन मिश्र की सभ्यता उतनी ही पुरानी है जितनी मेसोपोटोमिया (असीरिया, सुमोरिया एवं बेबीलोनिया की सभ्यताएँ) की सभ्यता। प्राचीन मिस्र की सभ्यता के जन्मदाता अवश्य ही इथोपियन, लीबियन, सीरियन और सिमेटिक रहे हों गें। प्राचीन मिस्र प्राकृतिक और भागोलिक दृष्टिकोण से चारों ओर से सुरक्षित था। विश्व की सभी सभ्यताएँ भूखण्ड के उसी स्थल में उदित हुई, जहाँ नदियों का निरन्तर प्रवाह बहता था। गंगा और सिन्धु नदी की तलहटी में, दजला – फरात नदियों की घाटीयों के किनारों (काँठे) में तथा याँगसी टिसी क्याँग की गोद में भिन्न – भिन्न प्राचीन सभ्यताओं का अभ्युदय हुआ। मिस्र की सभ्यता में भी नील नदी का अपना एक अलग ही योगदान रहा था। नील नदी की धाटी में प्राकृतिक साधनों ने ही एक उत्तम किस्म की सभ्यता को फलने – फूलने में मदद दी। नील नदी की धाटी में एक प्रकार का "पेपरिस" नाम का पौधा उपजाता था जिससे मिस्र वासी कागज का काम लेने लगे और यही आगे चल कर "पेपर" शब्द के रूप में प्रचलित हुआ। मिस्र की सभ्यता में पिरामिडों का अपना एक अलग ही योगदान रहा है जो कि 3800 ई. पू. से 2500 ई. पू. (तीन हजार आठ सौ ई. पू. से पच्चीस सौ ई. पू. तक) के बीच उनका अपना एक अलग ही इतिहास रहा है। जो कि दुनिया भर के सात–अजुबों में से एक हैं।

ईसा के लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व दजला (Tigri's) और फरात (Euphrates) नदियों के मध्यस्थलीय भाग में एक सर्व श्रेष्ट एवं समृद्ध सभ्यता (सुमेरिया की सभ्यता, बेबिलोनिया की सभ्यता एवं अेसीरिया की सभ्यता) के नाम से प्रसिद्ध हुई। मेसोपोटोमिया रुपी जलाशय में भिन्न भिन्न मानव जातियों की धाराओं का संगम हुआ, सुमेरियन सभ्यता, प्राचीन मिस्र की सभ्यता की समसामायिक ही थी। सुमेरियन सभ्यता के अवशेषों पर ही कालान्तर में बेबिलोनियन सभ्यता का उद्भव और विकास हुआ। बेबिलोनियन साम्राज्य का सबसे प्रतापी और महान् शासक हम्मूराबी (Hammurabi) था। इस वंश का यह छठवाँ राजा था। उसका शासनकाल 2123 ई. पू. से 2081 ई. पू. तक रहा था। इस राजा को महान् कानून का दाता (Law giver) भी कहा जाता है। बेबिलोनियन सभ्यता के अधःपतन के बाद उसी क्षेत्र में दजला फरात के उत्तर में एक नये राज्य का उदय हुआ। बेबिलोनियन सभ्यता के अस्त के बाद अेसीरिया की सभ्यता फूली–फली। इस सभ्यता के विशाल साम्राज्य को संभालने वाला प्रथम नरेश टिगलथ पिलेसर (Tigleth Pilesar) संस्थापक था।

सिन्धुधाटी की सभ्यता

सन 1826 ई. में चार्ल्स मोसन नामक एक अंग्रेज पश्चिमी पंजाब (जो अब पाकिस्तान में है) में हडप्पा नामक गाँव में आया। उसने वहाँ बहुत ही पुरानी बस्ती के बुर्जो और अदभुत ऊँची–नीची दीवारों को देखा। सन 1872 ई. में प्रसिध्द पुरातत्वबेत्ता सर अलेक्जेन्डर कर्निघम इस स्थान पर आया, उसे आस पास के लोगों न यह बताया कि जो यह ऊँचे टीले दिख रहे हैं वे एक हजार साल पहले के हैं। वे कोई प्रसिद्ध शहेर के अवशेष हैं। यह लेखक, इस सभ्यता का काल – निर्णय सही ढंग से नहीं कर सका। सन् 1924 ई. में एक अन्य पुरातत्वबिद् जॉन मार्शल ने हडप्पा के विषय में कि भारत की यह हडप्पा सभ्यता उतनी ही प्राचीन थी जितनी मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताएँ थी। सिन्ध में मोहेनजोदडों नामक स्थान से इसी प्रकार के तथ्य सामने आये हैं । मोहेनजोदडों जिसे कि "मुर्दो का टीला" भी कहा जाता है। मोहेनजोदडों में प्राचीन बस्तियाँ कुषाण युग से संबन्धित बौध्द' बिहार के नीचे दबी हुई पाई गयीं। लोहे का प्रयोग 2000 ई. पू. में शुरू हुई। मेसोपोटामियाँ की सभ्यता में मिली वस्तुएँ, हडप्पा और मोहेनजोदडों की सभ्यता में मिली वस्तुओं से मिलती जुलती हैं।

हडप्पा पूर्व औंर हडप्पा संस्कृत का कालानुक्रम 5500 ई. पू. से 3500 ई. पू. तक नव–पाषण–युग बलुचिस्तान और सिन्धु के मैदानी भागों में स्थित मेहरगढ़ और फीली गुलमुहम्मद जैसी बस्तियाँ भी उभरी। 3500 ई. पू. से 2600 ई. पू. तक आरिम्भक हडप्पा काल माना जाता है। ताँबा, चाक, और हल का प्रयोग इस युग में शुरू हुआ। मिट्टी के अद्भुत बर्तन बनाये गये। इस काल में पहाडों और मैंदानों में बहुत सी बस्तियाँ स्थापित हुई। 2600 ई. पू. से 1800 ई. पू. तक पूर्ण रूप में हडप्पीय सभ्यता का युग विकसित हो चुका था। बडे शहरों का अभ्युदय, समान आकार की ईटें, तौलने मापने के बाँट, मुहरें और मिट्टी के बर्तन नियोजित ढंग से बसे हुए शहेर और दूर दूर स्थानों के साथ व्यापार शुरू हुआ। 1800 ई. पू. से आगे उत्तर हडप्पीय सभ्यता का युग शिल्प और मिट्टी के बर्तनो की परम्परा जारी रही। पंजाब सतलज यमुना की ग्रामीण, संस्कृतियों का विभाजन और गुजरात में हडप्पा की शिल्प और मिट्टी के बर्तनों की परम्परा जारी रही। बहुत सी बस्तियाँ सिन्धु घाटी और सहायक नदियों के मैदानों में पायी गयी थीं। धोलावीरा की सभ्यता सरस्वती नदी के मुहाने पर बसी हुई पाई गयी हैं। अधिक विस्तार के लिए देखिए डॉ. (प्रो.) चन्द्रिकासिंह सोमवंशी, रिसर्च स्कॉलर, का स्पेशियल रिपोर्ट 'धोलाबीरा की सभ्यता : एक अध्ययन' की रिपोर्ट।

सिन्धु, राजस्थान, गुजरात के कच्छ के पान्द्रों, माता नो मढ़ तथा कुरून गाँव एवं धोलाबीरा, कोटाय, सुरकोटड़ा, ध्राँग, देसलपर, एवं बलूचिस्तान और अन्य क्षेत्रों में भी बस्तियों का काफी विस्तार हुआ। उन्होने अपने लिए उपयोगी पत्थरों की खदानों और अन्य खदानों में कोयला का उपयोग करना सीख लिया था। चौथी सहस्त्राब्दी ई. पू. के मध्य तक सिन्धु के कछारी मैदान परिवर्त्तन का केन्द्र बिन्दु बन गये। सिन्धु नदीं और छग्गर हाकरा नदियों के किनारों पर बहुत सी छोटी और बडी बस्तियाँ बस गयीं। धोलावीरा की हडप्पा संस्कृति की सभ्यता 5–6 हजार वर्ष पुरानी आँकी गयी है, जिसे अब अर्न्तराष्ट्रीय का दर्जा भी मिल चुका है। गुजरात के खाली कच्छ जिले में ही लगभग 50 जितनी हडप्पीय सभ्यता से सम्बन्धित स्थल पाये गये हैं। कच्छ में मिली कुम्भार के चाक पर बनी बैलगाडी का पहिया जो कि सभ्यता का पहिला कुन्जी था, मिली है और कंकरेट की बनी हुई दीवार भी पहिली बार कच्छ की पावन भूमि में पायी गयी है। कच्छ में धोलाबीरा में शंख से बनी हुई चूडियाँ, लाल पत्थर के बर्त्तन, मृतभांण्ड , हड्डियों के बने हुए कान व गले में पहनने वाले गहने और सबसे महत्व की चीज यह है कि जो लिपि वाला बोर्ड मिला है उत्खनन में से, वह अभी तक पढ़ी ही नहीं जा सकी है। पान्द्रों में अपार भण्डार जो कोयले (लिगनाइट) का मिला है उससे यह बात साफ – साफ जाहिर है कि वहाँ प्राचीन समय में बहुत ही घने जंगल रहे होंगे, और कुदरती प्रकोपों के कारण नीचे दब गये, लाखों – हजारों सालों के बाद "कोयले" के रूप में बाहर निकलने लगे, यही है कच्छ के पावन – भूमि की देन। हजारों , लाखों मीट्ररीक – टन कोयला पृथ्वी की गोद में से निकाल गया और आज भीनि काला ही जा रहा है।

गुजरात में हडप्पीय सभ्यता की जो बसापट का स्वरूप था वह एक जैसा नहीं था। कच्छ व काठियाबाड में छोटे – छोटे कटे हुए पठार थे और असमतल भूमि थी। दूसरी तरफ, इस क्षेत्र में खम्भात (Cambay) की खाड़ी और कच्छ की खाड़ी अर्थात् कच्छ के रण से जुडा एक प्राचीन अति समय में कच्छ दण्डआरण्य का एक घना जंगल था। बहुत विशाल समुद्रतट था। कच्छ के 320 कि.मी. के एक बहुत बडे भाग में अरब महासागर अपना विशाल पंख फैलाये खड़ा था। गुजरात मे हडप्पा के लोग चावल तथा खास कर कच्छ के लोग ज्वार – बाजरा एवं कही – 2 चावल का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे। हडप्पा सभ्यता के सबसे बडे नगर मोहेनजोदडों की जनसंख्या – 35000 थी। मोहेनजोदडों के आस – पास की भूमि की सतह लगभग 30 फूट ऊँची हो गयी। यहाँ की सबसे पुरानी ईमारतें आज – कल के मैदानी स्तर से लगभग 38 फुट नीचे पाई गयी। सन् 1922 ई. में डॉ. आर. डी. बैनर्जी और सर जॉन मार्शल की देख – रेख में खुदाई शुरु हुआ था। हडप्पा पहिली बस्ती थी, जहाँ खुदाई का कार्य सन् 1920 ई. में श्री दयाराम साहनी, एम. एस. बेन्टस और मार्टिमर व्हीलर जैसे पुरातत्व – वेत्ताओ की अध्यक्षता में हुआ था। हडप्पा नगर के अवशेष लगभग तीन – मील के घेरे में बिखरे पडे हैं। गुजरात में लोथल, सौराष्ट्र में रंगपुर, कच्छ के सुरकोटडा, कुरून, धोलावीरा, शिकारपुर, पान्द्रौं इत्यादि में बस्तियाँ पाई गयी। लोथल खंभात की खाडी के तट से लगे सपाट क्षेत्र में स्थित है। गुजरात में स्थित लोथल का नक्शा भी बिलकुल अलग सा है। यह बस्ति आयताकार थी जिसके चारों तरफ ईट की दिवार का घेरा था। कच्छ में सुरकोटडा नामक बस्ती दो बराबर के हिस्सों में बंटी हुई थी और यहाँ के निर्माण में मूलतः कच्छी मिट्टी की ईटों और मिट्टी के ढेलों रोडों का ईस्तेमाल किया गया था। जबकि धोलावीरा में पकी ईंटों और मिट्टी के पके ढेलों–रोंड़ों का इस्तेमाल किया गया था। इसके अलावां धोलावीरा में पकी और कच्ची ईटों दोंनो का प्रयोग बराबर होता था। सुरकोटड़ा में रोड़े (कंकरेट) की दीवार पायी गयी है। कच्छ और सौराष्ट्र में नगर चरण का अन्त रंगपुर और सोमनाथ जैसे स्थानों में स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। नगर चरण में भी उनकी हडप्पा मृद्‌भाण्ड परम्परा के सह अस्तित्व से स्थानीय मृंतिका परम्परा थी। उन्हें "चमकीलें लाल भाण्ड" कहा जाता है। पत्थरों से बने, पत्थरों के औजार काम में लाते थे।" प्रौढ हडप्पा" चरण में गुजरात में कुल 13 बस्तियाँ थी। परवर्त्ती हडप्पा चरण में जिसका काल लग. 2100 ई. पू. आँकी गयी है और बस्तियों की संख्या दो सौ से भी अधिक आँकी गयी है। यही बस्तियाँ आगे चल कर 200 या फिर दो सौ से भी अधिक हो गयी थी।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का दूसरा नाम 'सैंधव सभ्यता' भी थां डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी का मानना है कि सिन्धु सभ्यता ईसा से 3500 वर्ष पहले भारत में विकाश की चरम–सीमा पर पहुँच चुकी थी। डॉ. राजवली पाण्डेय ने इसको ईसा से 4000 वर्ष पुराना माना है। इस तरह सैन्धव सभ्यता नील नदी और दजला फरात की घाटीयों के सम–सामायिक थी। डॉ. गार्डन चाईल्ड और श्री हॉल ने इस सभ्यता को मिस्र और सुमेर से भी प्राचीन माना है। आधुनिक अनुसंधान के आधार पर सिन्धु घाटी की सभ्यता ईसा से 6000 वर्ष पुरानी आँकी एवं प्रमाणित की गयी है। श्री जान मार्शल के अनुसार सैन्धव सभ्यता का विस्तार एशिया तथा युरोप तक था। अधिकांशतः इतिहासकार सैन्धव सभ्यता के जन्मदाता दक्षिणी भारत के द्रबिण लोगों को ही मानते हैं। सिन्धुघाटी की सभ्यता सदियों तक अपने चरम् सीमा के विकाश क्रम को चूमती रही। इस सभ्यता का अस्तित्व युगों–युगों तक बरकरार (कायम) बना रहा। अभी तक इतिहास–बेत्ता इस निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं कि सैन्धव सभ्यता का विनाश क्यों, कब और कैसे हुआ। लेकिन पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि प्रलयकारी बाढ और विध्वंसक भूकम्प से ही इस सभ्यता का विनाश हुआ होगा। डॉ. (प्रो.) सी. एस. सोमवंशी , रिसर्च स्कॉलर, के मतानुसार "सैन्धव सभ्यता के विध्वंस में प्राकृतिक प्रकोपों के प्रचंड प्रहार का भयंकर विध्वंसक भूकम्प, सामुद्रिक तूफान, रफतार गति से चलने वाली झन्झा–झकोर हवाएँ एवं एक ही साथ मूजसाधार बर्षा आदि का ही हाथ होना विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं। आधुनिक भारतीय सभ्यता और संस्कृति की जननी यही सैन्धव सभ्यता ही है।" सिन्धु घाटी की नगर योजना, भव्य भवन, स्वाथ्यप्रद वातावरण, सडकों का विस्तार और बरसाती पानी निकलने की पक्की नालियों की व्यवस्था पर ही आधुनिक नगरों की नगरपालिकायें कार्यरत दिखलाई पडती हैं। चाँद पर चड़ने वाले युग और संसार की सभ्य एवं संभ्रान्त महिलायें वैसी ही साज–सज्जा, बनाव श्रृंगार करती हैं। जिस तरह सिन्धुघाटी सभ्यता की नारियाँ किया करती थीं। वास्तव में सैन्धव सभ्यता एक उच्च कोटि की वैज्ञानिक एवं विकसित सभ्यता थी। शिव, शिवलिंग शक्तिदेवी, मातृदेबी की मूर्ति, साँड (बैल) की मूर्ति नाग, पीपलवृक्ष तथा वृषक की पूजा उन्हीं सैन्धव सभ्यता के लोगों का आधुनिक देन ही तो हैं।

गुजरात के तमाम भागों में प्रागैतिहासिक शोध सबसे पहले ई. सन्. 1893 में श्री रोबर्ट ब्रुस फूट नामक एक प्रसिध्द भुस्तरशास्त्री ने किया था। साबरमती के पट में जो कि तहसील प्रांतिज के सादोलिया गाँव के सामने स्थित अनोडिया – कोट गाँव, जो कि तहसील बीजापुर में से ढेर सारे गढ़े हुए पत्थर के हथियार प्राप्त हुए है। समूचे गुजरात भर में सन् 1949 ई. तक प्राग् – ऐतिहासिक शोध – समुदाय की प्रवृति चालू रही। किन्तु 1942 ई. से 1963 ई. तक लांघणज में उत्खनन कार्य शुरु हुआ। सन् 1963 ई. में कच्छ के सुरकोटडा में उत्खनन कार्य शुरु हुआ। सौराष्ट्र – कच्छ, दक्षिण गुजरात तथा उत्तर – गुजरात आदि के उत्खननों में गढ़े हुए पत्थर के हथियार ढ़ेर सारी मात्रा में मिले है। लोथल के बाद रंगपुर देसलपुर, रोजडी इत्यादि में से हडप्पीय संस्कृति के अवशेष बहुत ही बडी मात्रा में मिले है। देशलपर में उत्तर – हडप्पीय लोगों का निवास था। मृत्पात्रों में लाल और बादामी रंग के मिट्टी के बर्तन (मृत्यभाण्ड) पाये गये है। क्रीम रंग के लेप वाली द्विरंगी लाल मृत्पात्र प्राप्त हुए थे। उत्खनन में से काफी बडी संख्या में से मानव – कृत पदार्थों के ऊपर से वहाँ पर रहने वाले मनुष्यों का ख्याल आता है। "धोलावीरा के सर्वेक्षण के दौरान मैं स्वयं डॉ. (प्रो.) सी. एस. सोमवंशी उन मृत्यभाण्डों का अध्ययन यहाँ पर किया हूँ। जब पृथ्वी के एक बहुत बडे भाग पर आदिम – मानव का संचार हुआ, तब से इनके जीवन में संस्कृति की उत्क्रांन्ति शुरु हुई उसे मानवशास्त्र की परिभाषा में संस्कृति कहते हैं। इसमें मानव द्वारा निर्मित चीजों, हुन्नरों, विचारों, संकल्पनाओं, मूल्यों आदि के सामाजिक बारसाओं में निहित होते हैं।" प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति यह प्राग्अक्षरज्ञान या फिर निरक्षरज्ञान के काल को "प्रागैतिहासिक काल" के रूप में जाना जाता है। मृत्यभाण्डों अर्थात टूटे हुए मिट्टी के बर्तन जो कि उत्खनन में से मिले हैं उस पर श्री डण।० वींदाल महोदय5 ने अच्छा काम किया हैं।

कच्छ–सौराष्ट्र जैसे विशाल प्रदेश में अनेकों प्राचीन संस्कृतियों का जन्म हुआ। इनमें सिन्धु घाटी की संस्कृति का भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में विशिष्ट स्थान रखता है। सिन्धु से स्थानान्तरण कर सिन्धु घाटी के लोग लग. 4500 वर्ष पूर्व किन संजोगों में होकर कच्छ सौराष्ट्र में आये। कच्छ के खडीर बेट वाले विस्तार क्षेत्र में स्थित धोलावीरा आद्यैतिहासिक संस्कृति का एक बहुत ही बडा स्थल है। नगरीय संस्कृति के लक्षणों से सम्पन्न यह नगर बस्तियाँ व्यापार – वाणिज्य के क्षेत्र में तो काफी प्रसिद्ध ही थे, बल्कि हस्त उद्योग में भी काफी विकाशशील थे। यहाँ से ताँबा, काँसा, पत्थर, शंख, कौड़ियाँ, सोने और अकीक में से बने हुए चीज वस्तुएँ हस्तकला की कारीगरी में सबसे आगे

थे। यहीं से मिट्टी के बर्तनों का ढेर, शंख, धातु की बंगडीयों, मोती, मूंग, सोने के आभूषणों एवं धातु गलाने की एक भट्ठी भी प्राप्त हुई है। यहीं से 6द्वीप की एक गोलाकार रिंग भी प्राप्त हुई हैं। जिनका उपयोग दिशासूचक के लिए या फिर पीछे के भारतीय पंचाग के बारह राशियों के प्रतीक के रुप में या फिर मापने की पट्टी होने का भी अनुमान होता है। इस नगर में बसने वाले लोग वासी प्रजा कला के बहुत ही पारखी थे या फिर कला के प्रेमी भी रहे थे। इसकी पुष्टि धोलावीरा में मिले हुए अनेकों प्रमाणों से भी होता है। नृत्य और संगीत का भी ज्ञान उन्हें बहुत था। सुरकोटडा के उत्खनन में से सेलखडी की एक मुद्रा पर लिपि युक्त लिखी हुई एकशृंगी पशु की आकृति (जो कि बडी शिलाखण्ड पर छीनी और हथोंडी से बनायी गयी है) उत् – खनित है अर्थात उत्कीर्ण है जोखा (जिला = सूरत) के उत्खनन में से प्राप्त सींग वाले पशु की एक छोटी सी शीश (मस्तक) लाल रंग की मिली है। जिसकी छोटी सी आँखे और अधर – ओठ, उत्पन्न सुन्दर कला–बैभव की छठा लिये हुए है। मालवण (जिला – सूरत के एक उत्खनन में से भी मिली हुई अनु–हडप्पीय समय की छोटी बृषभ (बैल) की आकृति भी नोट करने लायक हैं। देशलपर में उत्तर – हडप्पीय लोगों के बसती के अवशेष मिलते हैं यहाँ से चटुकाट वाला लाल मृतपात्र नहीं मिलते किन्तु बेसणीवाला सीधीं दीवार के वाडका जैसे कितने हडप्पीय मृतपात्र – प्रकार देखने में आते है अर्थात उत्खनन में से मिले हैं।

हडप्पीय लोग सिन्ध प्रान्त में से होते हुए सौराष्ट्र–गुजरात की तरफ आगे बढें, जिसकी पुष्टि कच्छ में से प्राप्त हडप्पीय संस्कृति के केन्द्रों पर से होती है। कच्छ में देशलपर, गुन्तली, पबुमठ, नानी रायण, सूरकोटडा, कुरून, शिकारपुर, धोलावीरा इत्यादि जैसे स्थानों के उत्खनन में से मिले हुए पुराअवशेषीय सामाग्री प्राचीन बस्तियों की संस्कृति, सभ्यता और कला पर से ही उनके बसने और बरितयों के बसने का पता चलता है। कच्छ के खडीर बेट बिस्तार में स्थित धोलावीरा आद्यैतिहिसिक संस्कृति का बडे से बडा स्थल माना जाता है। नगरीय संस्कृति के लक्षणों को धारण करने का साथ ही साथ व्यापारिक – बाणिज्य के कैन्द्र के उपरान्त हस्त–उधोग भी विकसित थी। यहाँ से ताँबां, काँसा, पत्थर, शंख, सोना और अकीक में से बने हुए अनेक चीज बस्तुएँ, हस्त – कला – कारीगरी का प्रमाण प्रमाणित करते है। यहाँ से मिट्टी के बिभिन्न आकार के बर्तन जो कि कई रंगो में रंगे हुए हैं। शंख और धातु की बनी हुई हाथ में पहनने के लिए कंगन, मोती, मूंग, सोने के आभूषण एवं धातुओं के गलाने की एक भट्ठी भी मिली है। यहाँ से प्राप्त एक छीप की जो गोलाकार रिंग मिली है उसमें बारह जगह चिन्ह बने हैं, जिसका उपयोग दिशा सूचन के लिए अथवा भारतीय पचाँग के अनुसार बारह राशियों के प्रतीक के रूप में या फिर मापने की पट्टी होने का अनुमान होता है। धोलावीरा को "कोटडों' के भी नाम से जाना जाता है। सिन्धुघाटी की सभ्यता भारतीय उपखण्ड के लगभग तीसरे भाग पर बिस्तृत थी ऐसा प्रतीत होता है। पंजाब में रुपक, हरियाणा में बाणाबलि, राजस्थान में कांलिबंगन, गुजरात में देशलपर, नवीनाल, खीरसरा, सुरकोटडा, पबुमठ, धोलावीरा, शिकारपुर, रंगपुर, रोजिडी, सोमनाथ, लांधणज, लोथल, महेगाम और कुरुन इत्यादि उनके प्रसिद्ध स्थल हैं। 20वीं सदी के प्रथम चरण में पुरातत्वविद्वानों ने हडप्पा और माहेनजोदडो की खोज करके एक अज्ञात सभ्यता को खोज निकाला। इन स्थलों का उद्भव और विकाश सिन्धु नदी की घाटी में होने से इसे विद्वानों ने "सिन्धु घाटी की सभ्यता" अर्थात् "सिन्धु खीड की सभ्यता" अर्थात् प्दकने टंससमल ब्पअपसप्रंजपवद के नाम से पुकारा है। इस सभ्यता संस्कृति के समयपट को हम " आद्यैतिहासिक काल अर्थात् च्तवजव. भ्पेजतवतपब.च्मतपवक के नाम से भी पुकारते हैं।

संस्कृति का प्रागैतिहासिक कच्छ

प्रो. दानी के अनुसार बेलन दर्रे से नीचे आने पर हम सिन्धु नदी के विशाल प्रदेश में प्रवेश करते हैं। मिट्टी के काम में विभिन्न आकार के और विविध रुपों में चित्रित बर्त्तन, बाणों की फलक (पत्री)– जैसे सुन्दर नोंके, पत्थर की मणियाँ, पत्थर के बर्त्तन और सैकडों कच्ची – पक्की मिट्टी की पुतलियाँ हमें आश्चर्य चकित कर देती हैं। धोलावीरा और सुरकोटडा, रंगपुर आदि में ऊपर बर्णित चीजें उत्खनन में से प्राप्त हुई हैं। उदाहरण के रूप में भारत की सीमा पर स्थित है इसका समय सर अरिल स्टाइन ने आल से लगभग 40 से 50 साल पहले 'सीस्तान संस्कृति' के अवशेषों को खोज निकाला था। किरणोत्सर्ग और 4235 फिशन ट्रैक पध्दति के आधार पर शहर – ई – सोख्ता संस्कृति का काल चार उपविभागों में बाटा गया। इसमें सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति का समय ई. पूर्व. 3500 से 3200 और चौथे का ई. पूर्व 1800 रो ई. से. 150 का मालूम पडता है। चहारदीवारी वाली नगर – रचना पहली बार सिन्धु सभ्यता में ही देखने को मिली है, जिसमें धोलावीरा नगरी की बाहरी आक्रमण–कारियों से रक्षा करने के लिए किले की दीवार पक्की बनायी गयी थी। घरों में प्राप्त चूल्हें जमीन के ऊपर और भीतर बनाये गये हैं। ऐसे चूल्हे आज कल गुजरात के लोथल, रंगपुर, एवं महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश में नहीं प्राप्त होते है। किन्तु पंजाब, हिमाचल प्रदेश, काश्मीर, ईरान में जहाँ तन्दूरी रोटी खाई जाती हैं आ तक भी काम में लाये जाते हैं। ऐसे विशिष्ट प्रकार के चूल्हे सिन्धु – संस्कृति के विशिष्ट अंग हैं। रोटी आँटे की लोई को हाथ पर थपथपा कर, गोल बना कर उसे चूल्हे ं के भीतरी भाग में दीवार पर चिपकाया जाता था। इस प्रकार एक ही साथ तीन – चार रोटियाँ एक साथ रखी जाती थीं और फिर शीघ्रता से एक लोहे की लम्बी शलाका से इन रोटियों को उठाकर उनके किनारे फेर कर अच्छी तरह से पक जाने पर निकाल लिया जाता था। फसल काटने के लिए अकीक पत्थर के छोटे फलक काम में लाये जाते थे। गहनों में अभी तक अकीक इत्यादि से बनाये हुए सादे मणके ही प्राप्त हुए हैं। चाक पर उतारे हुए साधारण लाल, पीले, भूरे रंगो से रंगे हुए, साधारण मोटाई वाली दीवार वाले छोटे – बडे मिट्टी के घडे (बर्तन) विशेषतयाः कटोरे और मटकियाँ प्राप्त हुई हैं धोलावीरा की सभ्यता में। इन बर्तनों की बनावटें बहुत ही सुन्दर हैं। दस और उससे भी अधिक प्रकार की चित्रकारी उन बर्तनों में दिखायी देती है।

सिन्धु संस्कृति की निरन्तर अभिबृध्दि उत्तर में ठेठ पेशावर तक और दक्षिण में ताप्ती–नर्मदा की तलहटी तक एवं पंजाब, हरियाणा, सिन्ध, पश्चिमी – उत्तर प्रदेश, गुजरात के कच्छ प्रदेश, (सुरकोटड़ा और धोलावीरा, कुरुन, शिकारपुर, ध्राँग, कोटडा जैसे 50 जगहों पर इत्यादि) आदि में सिन्धु सभ्यता विकसित हुई। जिन नगरों का थोड़ा बहुत खुदाई का कार्य हुआ है उससे उस संस्कृति की नगर रचना ज्ञात होती है। नगर एक नियमानुसार छोटे–बडे भागों या अंगो में विभाजित किये जाते थे। इनमें मुख्यतः दो अंग होते थे, कहीं – 2 तीन अंग भी देखने को मिलते हैं। एक साधारण ऊँचाई पर और पश्चिम की तरफ और दूसरा पूर्व में तनिक नीची भूमि पर या अलग। अंग्रेजी भाषा में इन दोनों को "सिटाइल" और "लोवरटाउन" के रूप में क्रमशः सम्बोधित किया जाता था। पहले में नगराधिपति, राजा रहते थे, ऐसी ब्यवस्था मोहेनजोदड़ों, हडप्पा, कालीवंगा, लोथल, रंगपुर एवं धोलावीरा इत्यादि में देखने में मिलता है। नगर के इन दोनों भागों की, चहारदीवारी पास – पास होती थी। कालीवंगा में अधिपति के रहने का जो भाग है वह मिट्टी से बने एक बिशाल ऊँचे टीले पर बना हुआ हैं। धोलावीरा सभ्यता में

तीन प्रकार की श्रेणियों (लोगों) का निवास था। (1) राजदरबार व शासक बर्ग के लोगों के लिए जिन्हें कि "सीता डेहल" के नाम से जाना जाता था। (2) दूसरा बर्ग अन्य अधिकारियों के लिए था, जिन्हे "अपर नगर जनों के लिए, जिसे "लोअर–टॉउन" के नाम से पुकारा जाता था। धोलावीरा के उत्खनन में काफी मिट्टी के बर्तनों का ढेर मिला है। जिन्हें हम मृत्रपात्र (मृतभाण्ड) की संज्ञा देते हैं। (।) इन बर्तनों को बनाने से पूर्ब मिट्टी को अच्छी तरह साफ करके तत्पश्चात् पैरों से गूँथ कर एक सरीखी बना कर उसमें आवश्यकतानुसार रेत की मात्रा मिला कर, चाक पर चढ़ा कर, बर्तनों को बहुत अच्छी तरह से सुडौल, डिजाइनदार अति सुन्दर बनाकर और बहुत ही कारीगरी से पकाया जाता था कि वे आज – तक भी वैसे –के–वैसे सुन्दर और सुदृढ़ हैं। इसी कारण उनके टीकरों (टूटे हुए टुकडों – मृत्र पात्रों) को देखने पर इस संस्कृति कें प्रचण्ड फैलाव का ज्ञान होता है। घरों और बर्तनों के अतिरिक्त इस संस्कृति की दूसरी विशेषता यह रही है की इसमें उपलब्ध होने वाले लाल अकीक के नक्काशीदार मनके (मणकें अर्थात् मणियाँ – मूगें), सुन्दर सोने के गहने, हार और चूड़ियाँ, मुद्राएँ पशु–पक्षियों, एवं स्त्री–पुरुषों की मूर्तियाँ जो कि उत्तर–दक्षिण की तरफ और पूर्व–पश्चिम, व ईशान नैत्रट्तय की दिशा की सूचक बताती हुई मिली हैं। धोलावीरा की आद्यैतिहासिक संस्कृति में एक हाँड–पन्जर (नरकंकाल) भी मिला है जो कि पद्यमासन की अवस्था में बैठा हुआ है समाधिकक्ष में से मिला हैं। इसी प्रथा का बर्तमान रुप 'दशनामी गोस्वामी समाज' में भी देखने को मिलता है उस समय भगवा व लंगोटी धारण करने की प्रथा रही हो गी। तौल–माप करने के साधन भी उपलब्ध हैं। धोलाबीरा नगरी का नष्ट औंर नगरों की ही भाँती हुई होगी। कच्ची–पक्की ईटों से चिनाई का तरीका और उसमें रखे जाने वाले बर्तन, गहने खिलौने इत्यादि आदि की अवधारणा से युक्त तथा सभी तरह से परिपूर्ण और संसार भर में (अर्न्तराष्ट्रीय स्तर का दर्जा पाने वाला धोलावीरा) अब तक सात प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक संस्कृतियों में, अधिकतम् विस्तार वाली सिन्धु संस्कृतियों में अधिकतम् विस्तार वाली सिन्धु संस्कृति 500 से 1000 बर्ष के लम्बे जीवन के बाद धीरे–धीरे नष्ट हुई हो गी। नष्ट होने के कारणों में सिन्धु–सरस्वती नदियों के प्रवाह में आये हुए भयानक बाढ़, प्रलयकारी बिनाशक भूकम्प, अधिक रफतार से (अतिशय बेग से) चलने वाली झंझा – झकोर तूफानी हवाएँ इत्यादि में आयी हुई बिनाशक परिवर्तनों एवं अतिशय सूखी हवाओं की वजह से धोलाबीरा जैसे बिख्यात नगर का बिनाश हुआ था। यह धोलावीरा नगरी सरस्वती नदी के मुहाने पर बसी हुई थी। जिस समय गंगा – यमुना का भरतखण्ड में प्रवाह नहीं हुआ था, उस समय सरस्वती नदी ही भारतबर्ष में सर्ब – प्रधान – नदी थी। ;ठद्धशिव के साथ ही साथ गंगा की उपासना भी समाज में प्रचलित हुई। ऋग्बेद में सरस्वती नदी महत्वशालिनी एवं मुक्तदायिनी थी। सरस्वती नदी का प्रवाह प्रबल और विस्तीर्ण था। ऋग्बेद के छठवें और सातवें मण्डलों में सरस्वती नदी का वर्णन है। किन्तु, पौराणिक काल तक आते – आते सरस्वती का यह महत्व शुरू होना प्रतीत होता है। कहा जाता है कि सरस्वती धरती पर अदृश्य रूप से बहती हैं आर प्रयाग में गंगा–यमुना के साथ त्रिबेणी पर उसका संगम होता है। सरस्वती में ऋषि–मुनीयों द्वारा दैवत्व की कल्पना की गयी है। उत्तरान्चल के बद्रीनाथ क्षेत्र में माणागाँव से ऊपर सरस्वती कुण्ड से सरस्वती का उद्गम माना जाता है। मदमहेश्वर शिव मन्दिर के निकट स्थित सरस्वती कुण्ड से निकलने वाली जल धाराओं को भी सरस्वती कहतें हैं। यह कालीमठ से नीचे अलकनन्दा में मिलती है। देव प्रयाग से लगभग 10 किलोमीटर नीचे गंगा और सरस्वती का संगम है, जहाँ सरस्वती ने शिव भगवान् की अराधना कर संगीत विद्या तथा बीणा प्राप्त की थी। ऋषिकेश में त्रिबेणी पर गंगा में मिलने बाली दो छोटी–छोटी नदियों कों यमुना और सरस्वती कहा जाता है। पौराणिक कोश के अनुसार पन्जाब की एक प्राचीन नदी सरस्वती, जिराकी क्षीण धारा कुरूक्षेत्र (हरियाणा) के पास अब भी है। महाभारत के अनुसार उत्तम–ऋषि के शाप से इसका जल स्रोत सूख गया।12 स्कन्दपुराण के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि ने इस सरस्वती मूलतः शतद्रु (सतलज) की एक सहायक नदी थी। जब सतलज अपना मार्ग बदल कर विपाशा अर्थात्–ब्यास नदी में मिल गयी, तो सरस्वती उसके पुराने पेटे में बहती रही। यह राजस्थान के समुद्र में मिलती थी जो काफि बड़ी बेगवती नदी के रूप में इसका बर्णन पाया जाता हैं। देबी भागवत के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण की जिह्वा से सरस्वती प्रकट हुई। श्री कृष्ण ने ही सरस्वती की पूजा को संसार में प्रसारित की थी। पूर्वकाल में नारायण की तीन पत्नियाँ थी लक्ष्मी, गंगा और सरस्वती। एक दिन भगवान् की ईच्छा से ऐसी घटना घटित हुई जिससे लक्ष्मी, गंगा, और सरस्वती को कुछ समय के लिए उनके चरणों से दूर हटना पड़ा। सरस्वती नदी के तीन स्थान माने गयें हैं स्वर्ग, पृथ्वी और वाग्देवी का नाम इला और अन्तरिक्ष बाहिनी वाब्देबी का नाम सरस्वती है। किसी समय 1600 किलोमीटर लम्बी एक बिशाल सदानीर नदी हिमनदी से प्रवाहित होती है जिसे सरस्वती नदी कहा जाता था। 'सिरसा' का नाम भी सरस्वती के कारण पड़ा। सिरसा को सरस्वती नगर भी कहा जाता है। पुरांतनकाल में घग्घर नदी सरस्वती से मिलती थी। सरस्वती नदी से घग्घर की तरह अनेक नदियाँ मिलती थी जैसे कि मारकण्डा , दृषद्वती , चौतंग , सोम , यमुना, सतलज आदि राजस्थान और गुजरात का कच्छ प्रदेश जो कि विशाल रेगिस्तान कहलाता था, में सरस्वती नदी के जलधरा के कारण शस्य–श्यामला हरी–भरा प्रदेश था। रेतीला रेगिस्तान नहीं। महाभारत का युध्द सरस्वती और दृष्द्वती के मध्य स्थित कुरूक्षेत्र में लड़ा गया था। हडप्पा , मोहेनजोदड़ों, लोथल, धोलाबीरा, कुरून, शिकारपुर, सुरकोटड़ा आदि नगर इसके बिशाल तट पर बसे हुए थे। यहीं सरस्वती नदी की प्राचीनता को बतलाते हैं। बिलुप्त हो चुकी सरस्वती नदी प्राचीन भारत की जीवनधारा थी। बैदिक काल में वह सदानीरा नदी महानदी थी। प्राचीन ऋषि–महार्षियों को बेदों जैसे अनमोल ग्रन्थों की रचना करने वाली सरस्वती, महाभारत काल में उसमें जल का अभाव होने लगा। पौराणिक काल में वह पवित्र सरवरो का रूप धारण का लघुरूप – धारिणी बन्दननीय बन कर रह गयी। कालान्तर में सरस्वती

जल शून्य होकर विस्मृत हो गयी। बिलुप्त सरस्वती की जीवन गाथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उदय एवं उन्नयन में अर्न्तनिहित है। सरस्वती नदी को ही "बिना माँग भरी" नदी अर्थात् "कुँवारी दुल्हन" के रूप में भी माना गया है। वह चाह करके भी सागर – संगम न कर सकी कभी भी वह अरब महासागर में प्रवेश न पा सकी। यह कच्छ के बिशाल रणमें बिलीन हो जाती है। किन्तु किसी समय सिन्धु नदी औंर सरस्वती नदी के मुहाने पर हड़प्पा , मोहनेजोउड़ों (मुर्दो का टीला), लोथल, धोलावीरा, शिकारपुर, कुरून, सुरकोटड़ो, आदि नगर बसे हुए थे। प्रसिध्द अर्न्तराष्ट्रीय ऐतिहासिक स्थल धोलाबीरा का महत्व कुछ अलग ही है। धोलाबीरा अपने लिपि के कारण यह सभ्यता दुनिया भर की सभ्यताओं में से श्रेष्ठ मानी गयी है। यह सरस्वती नदी तिब्बत सीमा से भारत की और बहती है। माणा ग्राम में केशवप्रयाग में ही अलकनन्दा में बिलीन हो जाती हैं। इस नदी पर एक पुल हैं। कहा जाता है कि पाण्डवों के स्वर्गारोहण यात्रा के समय भीमसेन ने द्रौपदी की सुविधा के लिए नदी के ऊपर एक शिला डालकर यह पुल बनाया था। इसे आज भी भीमशिला के रूप में जाना जाता है। यह शिला सरस्वती नदी पर स्थित हैं। जो पाण्डवों की कहानी को बयान करती है।

सिन्ध, पन्जाब, उत्तर–प्रदेश, राजस्थान, बलूचिस्तान और सीमा प्रान्त में इस संस्कृति का समूलतः नाश हुआ, किन्तु कच्छ और

सौराष्ट्र में इसमें काफि परिवर्तन हुआ। "मिट्टी के काम की परम्परा कुछ अंशों में सौराष्ट्र में टिकी हुई दिखलायी देती है और हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहना पडता कि जिस संस्कृति ने पश्चिमी भारत में लगभग एक हजार बर्ष तक साम्राज्य भोगा था, वह यों पूर्णतया कैसे नष्ट हो गयी। सरस्वती नदी के किनारे पर ही धोलाबीरा नगर बसा हुआ था। इस नदी को प्रलयकारी उपटन रूपी लहरों ने हमेशा – हमेशा के लिए उसे अपनी गोद में छिपा लिया अर्थात् निगल लिया।" यों तो एक तरह से यदि देखे तो पता चलता है कि पश्चिमी भारत में यह "संस्कृति का उषाःकाल" नहीं था बल्कि इस "संस्कृति का सन्ध्याकाल" ही था। जो नागरी संस्कृति 5000 बर्ष (पाँच हजार बर्ष पूर्व) यहाँ जन्मी (पनपी) बिकसित हुई और अपने यौवन की चरम्–सीमा तक पहुँची, अचानक उसका बिनाश (नाश) कैसे हुआ। इसके बाद लगभग 1000 से 1500 बर्षों तक बाद ही नागरी जीवन के दर्शन पुनः ई. स. के प्रारम्भ में होते हैं। सबसे पहला प्रमाण आज से लगभग 33 बर्ष पहले उत्तर – गुजरात के लांधणज गाँव में प्राप्त हुआ था। यह गाँव अहमदाबाद शहेर से लग. 37 मील उत्तर में यह गाँव स्थित है। यहाँ एक छोटे प्राकृतिक तालाब के तीन ओर रेतीली मिट्टी के टीबे हैं। यहाँ पर काफी बड़ी मात्रा में माइक्रोलिथिक ऐज से सम्बन्धित समाधियाँ प्राप्त हुई हैं। जैसे कि कच्छ में कुरून गाँव की समाधियाँ आदि यहाँ पर जानवरों की हडियाँ, मानव – अस्तिपन्जर और मिट्टी के बर्त्तनों के ठीकरे (टुकड़े) आदि मिले हैं। लांधणज की खुदाई छ – सात बार हुई हैं। लांधणज में 13 मानव–अस्ति पन्जर मिले है। गुजरात का मानव गैंडा, नीलगाय, सुअर, सियार आदि के कंकाल प्राप्त हुए हैं जिन्हें आदिम मानव खाता था।काला डुँगर में सियारों की भरमार है। दत्रादेय भगवान का (त्रिमुखी मुख वाला) मन्दिर पहाडी पर है। आरती के समय सियारों को 'परसादी' खाते हुए देखा जा सकता हैं। माइक्रोलिथिक ऐज (शव–पाषण काल) की स्थितियाँ कुरून (कच्छ) में बेमिशाल रूप में मिली हैं, जो देखने लायक हैं।

हमारी शती के बीसवें बर्ष में विश्व संस्कृति के क्षेत्र में एक महानतम् खोज हुई – सिन्ध (सिन्धु) घाटी में अपने लिए राजनीतिक दृष्टि से आवश्यकरेल मार्ग बिछाते हुए अंग्रेजों को मिट्टी की कई परतों में डूबे पड़े 8000 बर्ष से भी ज्यादा पुराने नगरों के अवशेष मिले हैं। पक्की ईटों से निर्मित बहु–मन्जिलें रिहायशी मकानों, सार्वजनिक जल, जल निवास प्रणाली का बढ़िया रूप, सामूहिक स्नानगारों और पेय जल के कुओं से युक्त ऐसे सुनियोजित नगर प्राचीन दुनिया में एक अद्वितिय परिघटना थे। इस तरह के नगर न प्राचीन मिस्र में पाये गये और मोसोपोटोमियाँ में भी भारतीय संस्कृती एवं सभ्यता का जिन्दा जागता रूप कच्छ की पावन–भूमि धोलावीरा और गुजरात के लोथल में जो पाये गये हैं वे 5 से 6 हजार बर्ष पुरानी सभ्यता के नगरों के अवशेष हैं, जो कि अर्न्तराष्ट्रीय स्तर के दर्जे को चूम रहे हैं। हडप्पीय संस्कृति , मोहोनजोदड़ों चहुँजोदडों तथा धोलाबीरा कुरून इत्यादि सभ्यताएँ अपनी – अपनी सुविधाओं के लिए मशहूर रही थीं।

तटस्थता और सूक्ष्मता से भारत की संस्कृति, सभ्यता और राष्ट्र का अवलोकन करने वाले किसी भी निष्पक्ष ब्यक्ति को दो परस्पर – विरोधी विशेषताएँ अवश्य दिखाई दें गी। अनेकरुपता के साथ–साथ एकता। सबसे पहले हम भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में घूमते हैं तत्पपश्चात् हम देश की भौगोलिक स्वरुप को खोजते हैं। हमारे देश की जलवायु सतरंगी है। हिमालय में हमेशा बर्फ जमा रहती है, काश्मीर में उत्तरी युरोप जैसा मौसम रहता है। राजस्थान और कच्छ में तप्ती हुई रेगिस्तानी मरुस्थलीय भूमि रही है, दक्षिण प्रायः द्वीप में बैसाल्ट की पर्बत श्रेणीयाँ और ग्रेनाइट के पहाड़ है। दक्षिणी छोर पर उष्णकटिबंधीय गरमी और पश्चिमी घाट की कंकरीली मिट्टी में घने जंगल हैं। दो हजार मील लम्बा समुद्रतट, जलोढ मिट्टी की चौड़ी और उपजाऊ घाटी, में महान गंगा और उसकी सहायक नदियों का समूह, छोटे समूह वाली अन्य बड़ी नदियाँ कुछ प्रमुख झीले, कच्छ और उड़ीसा प्रदेश के दल–दल, भूगोल और भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से भारत इत्यादि से भारत में तीन खाड़ियाँ मशहूर हैं (1) बंगाल की खाडी (2) खम्भात की खाड़ी और (3) है कच्छ की खाड़ी, इत्यादि से भारतवर्ष जैसे महाद्वीप का मानचित्र पूरा हो जाता है। भारत की पवित्र नदी गंगा के तट पर या इसके समीप ईसा पूर्ब पहली सहस्त्राब्दी तक किसी महत्वपूर्ण शहर की स्थापना नहीं हुई थी और तब तक सिन्धु घाटी की सभ्यता बिस्मृति के गर्भ में बिलीन हो चुकी थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता की संस्कृति काँस्य युग की थी। हडप्पीय संस्कृति और मोहेनजोदड़ों के हथियार यद्यपि काँस्ये के ही होते थे।

सिन्धु संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी अनाज पैदा करने की विशेष पध्दति का बर्णन मिलता है। उच्चित्रित कंकडों से आगे बढ कर ही बाद में सिन्धु – घाटी की उत्कीर्ण मुहरें बनी हैं। मोहेनजोदडों से प्राप्त हथियार वहाँ के वढ़ियाँ औजारों की तुलना में कमजोर हैं। भाले पतले और पर्शुका रहित है। बाहिरी आक्रमण कारियों से बचने के लिए मोहेनजोदडों और हडप्पा में कालान्तर में किले बन्दी की गयी थी। कच्छ की पावन भूमि में सुरकोटड़ा में कंकरेट की पहली बार दीवार मिली है। गाडी का 'पहिया' भी पहली बार कच्छ में पाया गया है। जो कि सभ्यता का प्रथम धुरी रहा है। 'पहिया' और पालतू जानवर 'कुत्ता' ही सभ्यता के निर्णायक रहे हैं। धोलावीरा की सभ्यता और कच्छ में मिले हुए 50–55 से भी अधिक पुरातन सभ्यताएँ सभी करीबन 5 से 6 हजार बर्ष पुरानी साबित हैं जिन्हें अर्न्तराष्ट्रीय स्तर का दर्जा भी मिल चुका है। गुजरात के लोथल और राजस्थान के कालिबंगन में मिली हुई सभ्यताओं में से भी उच्चकोटि की सभ्यता कच्छ के 'धोलावीरा' में मिली है। जो कि सरस्वती नदी के मुहाने पर बसी हुई थी। एक ही साथ इस सभ्यता को अपने बाढ की चपेट में निगल लिया। परिवर्त्तन प्रत्येक संस्कृति की अनिवार्य आवश्यकता है। संस्कृति शब्द का प्रयोग भिन्न – भिन्न कालों में भिन्न 2 रुपों में हुआ है। अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का प्रयोग कुछ लेखकों ने पूर्वज लिपि हीन जातियों की जीवन ब्यवस्था के अर्थ में किया है। अनेक समाज–वैज्ञानिकों के मतानुसार संस्कृति में हमें मानबीय उद्दश्यों की समष्टि को कहना चाहिए और सभ्यता मानवीय साधनों की समष्टि को। संस्कृति को काब्य और साहित्य के धरातल से उठाकर विज्ञान के धरातल पर रखने का श्रेय मानव विज्ञान को है। मानवशास्त्रियों ने संस्कृति की ब्याख्या 'पर्यावरण का मानव – निर्मित भाग' के रुप में उजागर कर चुकें है। हम उसे मानसिक, नैतिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजकीय, कलात्मक अथवा सारांश में मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में सीखे हुए ब्यावहार प्रकारों की समग्रता को कहते हैं। डॉ. चन्द्रिकासिंह सोमवंशी, रिसर्च स्कॉलर, के मतानुसार "संस्कृति के विकाश के साथ ही साथ मानव का भी विकाश क्रम शुरु हुआ। संस्कृति के विकाश के स्तर तो अनेक हैं। किन्तु संस्कृति – विहीन मानव – समुदाय इस संसार में एक भी नहीं है। संस्कृति सदा परिवर्तनशील होती हैं। संस्कृति जड़ नहीं होती, गतिशीलता उनकी एक उल्लेखनींय बिशेषता होती है। मानव जीवन की आवश्यकताओं और समय–समय पर प्राकृतिक एवं सामाजिक परियावरण में हाने वाले परिवर्त्तनों में सामन्जस्य बनाये रखना उसका एक मुख्य उद्देश्य है। मानव विज्ञान के बिकाश की आरिम्भक स्थिति में यह माना जाता था कि मानव को प्रत्येक संस्कृति क्रमिक बिकाश के कतिपय अनिवार्य स्तरों से ही गुजरती है।" साथ ही साथ यह भी माना जाता था कि बिकाश के ये स्तर संसार के प्रत्येक भाग में एक से होते हैं। संस्कृति में प्रसारबाद का महत्व बहुत है। संस्कृति – परिवर्त्तन और संस्कृति – परिवर्धन के सिध्दान्तों को बिकसित करने में प्रसारबाद का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। संस्कृति तत्वों और उनके संकलों कि विशिष्ट योजना से जो भौगोलिक एवं ऐतिहासिक

प्रसार से प्रभावित रहते हैं। इन संस्कृति–बृत्तों का निर्माण होता हैं। भिन्न धरातल पर इसी प्रकार का प्रयत्न अमरीकी प्रसारवादियों ने भी संस्कृति क्षेत्रों के सिध्दान्त को बिकसित करने में किया है। संस्कृति के संवर्धन और बिकाश के लिए नबीन तत्वों को ग्रहण करना आवश्यक होता है। एक देश को छोड़ कर भिन्न संस्कृति के दूसरे देश में स्थायी रूप से जा बसने वाले ब्यक्तियों को कम से कम आंशिक रुप से अपना पुनःसंस्कृतिकरण करना पड़ता है। संस्कृतिकरण ब्यक्तित्व के बिकाश में सहायक सिध्द होती हैं। संस्कृतिकरण उस प्रक्रिया को कहतें है जिसके द्वारा ब्यक्ति अपनी संस्कृति के तत्वों को अपनाता हैं। भूलतः यह एक मानसिक प्रक्रिया है इसमें आत्मीकृत तत्वों की अभिब्यक्ति आन्तरिक भी हो सकती हैं। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का धरातल मानसिक – सामाजिक होता है। संस्कृति का सम्बन्ध सीधा सभ्यता व राष्ट्र भी होता हैं। संस्कृतिकरण – समाजीकरण और समाज – नियंत्रण की प्रक्रियाओं में बड़ा निकट का सम्बन्ध होता है। संस्कृति की जटिल रचना को भली – भाँति समझने के लिए बहुमुखी अध्ययन अत्यन्त आवश्यक हैं। संस्कृति तत्व और संस्कृति – संकुल हम उसकी इकाइयों और उनके संगठन का परिचय देते हैं। संस्कृति क्षेत्र के अध्ययन से हमें उसके बिस्तार और ब्यापकता का बोध होता हैं। 'संस्कृति – संरुप' के बिश्लेषण द्वारा हम उसके मूल्यों, आदर्शो और जीवन दृष्टि की गहराईयों में पहुँचते हैं। संस्कृति के निर्माण द्वारा मानव अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन उपलब्ध कर जीवन – यापन की अपनी बिशिष्ट परिपाटी निर्धारीत करता है। संस्कृति द्वारा निर्मित होकर भी मानव अपनी संस्कृति के नये सीमान्तों तथा आदर्शों एवं मूल्यों का बिकाश करता रहता हैं।

संस्कृति को राष्ट्रीय परिभाषा में हम कह सकते हैं कि संस्कृति तुष्टिदायिनी होती है। उसके संगठन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव की प्राणी–शास्त्रिय प्रेरणाओं और आवश्यकताओं के पूर्ति के साधन उपलब्ध करना होता है। भूख – प्यास , यौन–इच्छा तथा आत्म – महत्वा की अभिब्यक्ति और स्वीकृतिं मानव की इन तीन महत्वपूर्ण शारीरिक – मानसिक आवश्यकताओं की नियमित पूर्ति की योजना प्रत्येक संस्कृति में पायी जाती है और प्रत्येक सभ्यता एवं राष्ट्र में उजागर होती है। संस्कृति की परिभाषा में हम कह सकते है कि संस्कृति पर्यावरण का मानव – निर्मित भाग है। संस्कृति निर्माण की क्षमताएँ मानव को प्रकृति से मिली हैं परन्तु संस्कृति स्वयं सम्पूर्णतः मानव की रचना है। संस्कृति के निर्माता होने की गौरव , जीव – जगत् में केवल मानव को ही प्राप्त है। मानव संस्कृति के बिकाश में उन पाँच प्राकृतिक बरदानों में ही निहित है। इन्हीं की ही मदद से ही मानव ने अपनी बिशिष्टपूर्ण जटिल संस्कृतियाँ बिकसित की है। (1) मानव को खडे हो सकने की क्षमता (2) मानव के हाथों की रचना, विशेषकर उनका स्वतंत्रता पूर्वक घुमाया जा सकना और उनसे चीज बस्तुओं का पकडने की योग्यता सीख कर सभ्यता और राष्ट्र में मदद देना (3) मानव की तीक्ष्ण एवं केन्द्रित की जा सकने वाली दिव्य दृष्टि (4) मानव का तार्किक तथा कार्य – कारण सम्बन्ध स्थापित कर सकने में सक्षम मस्तिक और (5) मानव की भाषा के माध्यम से बिचारों का आदान–प्रदान करने की बिलक्षण शक्ति की क्षमता। यदि मानव के पास बाणी और भाषा की शक्ति न होती तो उसके आविष्यकारों का बिस्तार एवं प्रसार अत्यन्त सीमित होता। जिस आश्चर्य जनक गति से उसके कतिपय आविष्यकारों का प्रसार विश्वब्यापी धरातल पर हुआ है उसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण मनुष्य की भाषा शक्ति ही है। संस्कृति की संयोजना एक त्रिकोण त्रिभुज के रुप में प्रस्तुत की जा सकती है।

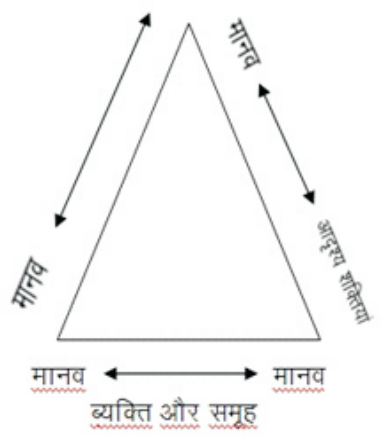

संस्कृति के अर्न्तगत तीन भिन्न धरातलों के मानवीय ब्यवहार – प्रकारों की समग्रहाएँ आती है। प्रागैतिहासिक युगों में संस्कृति का बिकाश विभिन्न स्तरों में हुआ। पृथ्वी के गर्भ में मानवीय संस्कृति के विकाशा का जो क्रम आगे चला वह कुछ इस प्रकार का है। (1) आदि पाषाण युग (इथोलिथिक) Etholithic Age (2) पुरा पाषाण काल Pealolihic Age (पेलियो लिथिक युग) ईसा पूर्व 1000, से 10,000 बर्ष पूर्व (3) नवपाषाण युग (नियोलिथिक युग) Neolithic Age 10,000 ईसा पूर्व से 4,000 ईसा पूर्व तक (4) ताम्रपाषाण युग (Copper Age) 4,000 ईसा पूर्ब से 3,000 ईसा पूर्व तक (5) कांस्य युग 3,000 ईसा पूर्व से 2,000 ईसा पूर्व संस्कृति का आविर्भाव, बिकाश और विस्तार मानव से ही जुडा है। भारतीय संस्कृति ने तो इस मुक्ति=मोक्ष को भी जीवन के 'पुरुषार्थ' के रुप में स्वीकार किया जाता है अर्थात् उसके लिए 'मोक्ष' भी संस्कृति का एक मूल्य है। भाषा कि दृष्टि से, संस्कृति की समष्टि का नाम ही संस्कृति है। मानव समाज की संस्कृति में जिसमें गति के साथ स्थिति का सम्बन्ध रहता है, संस्कृति प्रगतिशील कहलाती है। मानव प्राणी किसी समय प्राकृत रहा होगा। संस्कृति होने के लिए युगों का समय लगा, इसमें सन्देह नहीं। संस्कृति का सहज, सच्चा मौलिक स्वरुप लोक संस्कृति है जो मानव संस्कृति का पर्याय है। संस्कृति मानव की परिभाषा के अनुरूप होती है। यों तों आर्य संस्कृति का मूल रूप कबीलाई था। उस युग में (लग. 2500 ई. पू.) मिस्र अबिसीनिया, यूनान, मेसोपोटेमिया, सुमेर, ईरान , अफगानिस्तान – रुसी, तुर्किस्तान (बल्ख बुखारा – समरकन्द आदि) और सिन्धु से पार सरस्वती के तट तक का समूचा प्रदेश अनेक प्रकार से जुड़ा हुआ था, और इनमें सांस्कृतिक लेन –देन जोरों पर थे। संस्कारों के ब्यूह कों हम संस्कृति कहते हैं, और वह

संस्कृति स्वयं एक शक्ति है अथवा शक्ति बन उठी है, जैसे की प्रकृति है। संस्कृति वास्तव में लोक संस्कृति अर्थात् लोक की मूल्य – चेतना का नाम है। मानव – जीवन की सम्पूर्ण विद्या , आचार –बिचार बिहार – बिनोद भाषा–साहित्य – कला – धर्म दर्शन– मानव – सम्बन्ध सभी का मूल्यबोध प्रदान करती है। मानव ने युगों की यात्रा में अनन्त सर्जनाओं–अर्जनाओं के द्वारा मानव – सम्पदा संचित की है, जिसका नाम ही संस्कृति हैं। "सभ्यता किसान की कुटिया से निकल कर शहरों में ही एक संस्कृति के रुप में पूर्णतया से फली–फूली ।" संस्कृति का संकट राष्ट्रीय चरित्र की गिरावट से उठ खड़ा होता है। क्योंकि राष्ट्रीय चरित्र की प्रेरणा औंर निर्माता – शक्ति ही उसकी मूल्य – चेतना है। संस्कृति में आनन्द , आस्वादन और आश्चर्य , चित – द्रुति , दीप्ती और विस्तार रहते हैं। सर्जक कबि – कलाकार के लिए प्रकृति औंर संस्कृति का अन्तर महत्वपूर्ण होता हैं। प्रकृति के भीतर गहरे से जुड़ा हुआ कोई आदमी मण्डल (एंथ्रोपोस्फीयर) के बुलडोजर के नीचे रौंद डाला। डॉ. आर. एस. डेसमेन के मतानुसार मानव् परिस्थितिशास्त्र (ह्यूमन इकोलॉजी Human Ecology) ने लोगों को तीन खण्ड़ों में बाँट दिया । (1) इकोसिस्टम पीपुल (2) बायोस्कीयर पीपुल और (3) इकोलोजिलक रिफ्यूजी। जमीन से गहरे हुए जुड़े लोगों को उन्होंने 'इकोसिस्टम मानव' अर्थात् 'प्राकृतिक मानव' माना जाता है। ये सभी संस्कृति के अन्दर ही पनपी और बढी हुई हैं। संस्कृति के सृजन में प्राचीन नदीयों का भी अपना एक अलग ही महत्व रहा हैं। यमुना लाखों बर्ष पहले यह सिन्धु नदी की सहायक नदी थी, और अरबमहासागर में अपने जल को डालती थी किन्तु अब यह गंगा की सहायक नदी बन गयी है और इसका जल अब बंगाल की खाड़ी में मिलता है। यह एक अन्य नदी सरस्वती की जुड़वा (बहिनें) सरिता थी। सरस्वती का जल ग्रहण क्षेत्र सतलज और यमुना के बीच था। ये दोनों शिवालिक पर्वत के नीचे नाहन के पास से गुजरती थीं। मिलने के बाद भी सरस्वती नदी का तल अभी भी हरियाना, पंजाब, व राजस्थान में मौजूद है। संस्कृति के क्षेत्र में सभ्यता का महत्व खूब आगे बढ़ा । क्रमशः १९८५ ई. १९८७ ई. और १९९० ई. तक में किये गये उत्खनन में महाभारत कालीन सभ्यता की महत्वपूर्ण कड़ियाँ सामने आई। जोशीमठ से ६२ कि.मी. दूर समुद्रतल से ३,८०० मीटर की ऊँचाई पर स्थित मलारी मध्य हिमालय में महापाषाणीय शवागर (कब्रिस्तान) संस्कृति के साक्ष्य सामने रखती हैं। यहाँ चूने के बने हुए पहाड़ों को खोद कर मृतक के शरीर को दफनाने की प्रथा संस्कृति की पृष्ठभूमि में उजागर हुई हैं। मानव शवागारों की अस्थिओं के अवशेषों के अतिरिक्त यहाँ से घोडे के शव के अवशेष (कंकाल, मृदभाण्डों सहित) मिले हैं। गुजरात के कच्छ जिले में कुरून गाँव में महापाषाण युगीन शवागार (कब्रिस्तान) एक बड़ी मात्रा में मिला है। "हमारे बिचार से संस्कृति एक सर्जनात्मक ऊर्जा हैं। यह ऊर्जा सभ्यता और संस्कृति पर निर्भर करता है। इतिहास को टटोलने से पता चलता हैं कि उन सभ्यताओं का उत्कर्ष–अपकर्ष उस समय की उनकी संस्कृतियों की स्थिति पर आश्रित एवं अवलम्बित थी तथा मनुष्य भौगोलिक पर्यावरण की खूँटी से बँधा हुआ था और बँधा हुआ हैं।" पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व लाखों – हजारों अरबों–खरबों वर्ष पूर्व हुआ हो गा। 'सूर्य ग्रहर्ण और शनि ग्रह' पर हो रहे असमानता के कारण से ही पृथ्वी पर बिन – मौसम की चीजे, ठन्डी, गर्मी बरसात भूकम्प आदि हो रहे हैं। यद्यपि इस बात को भूला नहीं जा सकता कि संस्कृतियाँ पारस्परिक संघर्ष के परिणाम में ही समन्वित होती और रूप धारण करती है। सैन्धव सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त सामाग्रियों से प्रमाणित होता है कि इसके नागरिक किसी प्रकार की लेखन शैली से अवश्य अवगत (परिचित) थे। अेसिरिया और मिश्र की भाँति यहाँ (भारतबर्ष) अभिलिखित प्रस्तर अथवा मृतिका अथवा मृतिका–पट्टिकाएँ नहीं मिली हैं, परन्तु अत्खनन में उल्लिाखित जो मुहरों की राशी मिली है वह इसे सिध्द करने में अकाटय प्रमाण हैं। सैन्धव सभ्यता के लोग जिन पालतू जानवरों का प्रयोग करते थे उनमें से जिनके अस्ति – पन्जर मिलें हैं वे हैं – साँड, भेंड, बकरी, शूकर (सुअर), भैंस, ऊँट और हाथी हैं। डॉ. मैके को सन्देह है कि सैन्धव के लोग ऊँट और हाथी जैसे जानवर से परिचित थे या नहीं। ऋग्बैदिक काल से शायद सदियों पूर्व सिन्धु नदी के किनारों पर जीवन लहरें मारता था, सभ्यता सक्रिय थी। इस काँठे के मानव केन्द्रों की संस्कृति उच्चकोटि की थी। अनेक अंशों में मेसोपोटमियाँ, एलम और मिश्र की सभ्यताओं से वह आगे थी। इस सैन्धव सभ्यता को प्रस्तर–धातु युगीन (Ehaleolithic Age) कहते हैं। क्योंकि इस युग में पत्थर के हथियार और भाण्डों के साथ – साथ ताँबे और काँसे के हथियार और भाण्ड भी प्रयुक्त होने लगे थे।

1.पुराणों में प्राग्महाभारत कालीन इतिहास By डॉ. कुवँरलाल ब्यास शिश्य , पृ. 10 और 11.

2.प्रागैतिहासिक गुजरात By एच.डी. सांकालिया गुजरात की गौरव गाथा', 'पथिक', जरनल, वर्श 7, अंक 10–11, पृ. 31–35, 'कच्छ में आदिअश्मयुग' पथिक', दीपोत्सवी, सं. 2024, पृ. 41–45, और 'पथिक' दीपोत्सवांक – अक्टूम्बर – नवम्बर – दिसेम्बर अंक 1999, पृ. 37.

3.मैं और धोलावीरा के जनक श्री शंभुप्रसाद गढवी जी से मृत्यभाण्ड (टूटे हुए मिट्टी के बर्तन) को हाथ में लिए पारखी नजरिये से परखते हुए लेखक व गढवी जी चित्र में दिखाई दे रहे हैं।

4. Encyclopaedia of Social – Sciences Vol IV, page No. 621 By Malinowski.

5.वही पृ. 621 से आगे और Pre – History and Proto History in India and Pakistan Introduction By prof. H.D. Sakalia पृ- IX.

6. Indian Pre – History, Page No. 124-127.

7.पथिक जरनल, मासिक, इतिहास–पुरातत्व, दीपावली अंक विशेशाक, बर्श 40, अंक 1–2–3, अक्टूबर–नवम्बर और दिसम्बर अंक, 1999, पृ. 40–41

8. "कुमार" पत्रिका, अंक 457, जून 1999 कच्छ की आद्यौतिहासिक नगरी बसी हुई धोलाबीरा पृ. 334–335.

9.सांबरकांठा में से मिले हुए प्राचीन गुफा चित्र ठल रबि हजरनीस और मा.छे. बर्मा, "कुमार" फरवरी 1979. पृ. 43, और गुजरात विद्यापीठ, शरद 2055 संडग अंक 101 , पृ. 49.

10.अखण्ड भारत में संस्कृति का ऊशाकाल ठल डॉ. हसमुख धीरजलाल सांकालिया, प्रथम सं. 1981. पृ. –11, पृथ्वी प्रकाशन, बाराणसी – 221005.

11. वही , पृ. 11 से आगे।

12. लेखक डॉ. (प्रो.) चन्द्रिकासिंह सोमवंशी सी. रिसर्च स्कॉलर, के साथ श्री बसुदान गढ़वी के साथ मिट्ठी के बर्तनों का अध्ययन करते हुए चित्र को देखिए धोलावीरा में।
13.बेद और उसका साहित्य By डॉ. चर्तुसेन शास्त्री कृत, पृ. 55.
14. उत्तरान्चल के देवालय By श्री त्रिलोकचन्द्र भट्ट. पृ. 232, पृ. सं. 2004 ई., तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली.
15. वही , पृ. 245 और आगे।
16.Mohenjo – Dara and Indu Civilization By Dr. Marshall j., Vol. I and III , London. 1931. Val I[st] , Page 40, और भारत के नगर By कोरोत्सकायाः एक ऐतिहासिक सिंहावलोकन , 1984 , पृष्ठ – 17.
17. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता By डॉ. दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी कृत, पृ. 12.
18.वही, पृ. 81
19.मानव और संस्कृति By डॉ. श्यामाचरण दूबे, ख्याति प्राप्त मानवशास्त्री, पृ. 222. लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
20.इस तथ्य का बिस्तृत वर्णन प्रो. डी. एन. वाड़िया की पुस्तक, जिओलॉजी ऑफ इण्डिया में देखने को मिलती है, और संस्कृति पर्यावरण और पर्यटन डॉ. हरिमोहन, पृ. 51.
21. राष्ट्रीय सहारा By महेन्द्र, 26 मई , 1882 ई. और स. पृ. पर्यटन , पृ. 51 दृ.
22. सं. प. पर्यटन , पृ. 136.
23.Mohenjo-dara By सर जोन मार्शल, भाग–1, अध्याय – 8, पृ. 110–112.
24. Script of Harappa and Mahenjo-daro By डॉ. जी. आर. हन्टर कृत, 1934 ई. एच. हेरासः The Story of the Two Mohenjodaro Signs. j.B.H.U., खण्ड–2, भाग–1, पृ. 1–6
25.The Indo-Sumerian Seals Deciphered By एल.ए. वाडेल , लन्डन , 1925.
26. The Hindus Civilization By डॉ. मैके , पृ. 88.
27.Mohenjodara and the Indus Civilization (तीन खण्डों में) के. एन. दीक्षित Pre-Historic Civilization the Indus Velly (मद्रास 1939) श्री. एन. ला, Indian Historical Quart, मार्च 1932 ई. (खण्ड – 8, नं. 1 , पृ. 121 – 164), मैके का The Indus Civilization Mem. Arch Surv. Ind नं. 41 और 48, माधोस्वरूप वत्स Excavations at Harappa खण्ड – 1, और 2, 1940 ई. सन्.

Publish Research Article
International Level Multidisciplinary Research Journal
For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Book Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

Associated and Indexed,India

- International Scientific Journal Consortium
- OPEN J-GATE

Associated and Indexed,USA

- EBSCO
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database
- Directory Of Research Journal Indexing

Golden Research Thoughts
258/34 Raviwar Peth Solapur-413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com
Website : www.aygrt.isrj.net